Cosmos Multidisciplinary Research E-Journal
Online Available at www.cmrj.in
Recognized International Peer Reviewed Journal
Impact Factor 4.94
ISSN No. 2456-1665

साहित्य, समाज और सिनेमा

डॉ. वाघमारे के.एच.
हिंदी विभाग,
कालिकादेवी महाविद्यालय, शिरूर (कासार)
Mo.9960345194 basmath2014@gmail.com

प्रस्तावना :

साहित्य समाज का दर्पण है। वर्तमान काल में साहित्य समाज को प्रभावित कर रहा है। देश का साहित्य भी राष्ट्रीय भावनाओं को प्रकट करके समाज को उनमें तल्लीन कर रहा था। साहित्य और सिनेमा यह दोनों विधाएँ स्वतंत्र हैं। साहित्य और सिनेमा दोनों का एक-दूसरे से अभिन्न संबंध है। साहित्य को 'हितेन सह इति सहितम् तस्य भावः साहित्यम्' कहा जाता है। अर्थात हित से युक्त रचना साहित्य है। साहित्य में मनुष्य जीवन की सहज अभिव्यक्ति होती है। उसमें समाज जीवन का यथार्थ चित्रण होता है। साहित्य में मनुष्य जीवन के सुख-दुःख, हर्ष-विषाद, अच्छा-आकाक्षाएँ, मनुष्य जीवन का संघर्ष, सामाजिक जीवन, सामाजिक समस्याएँ आदिक का प्रतिबिंब दृष्टिगोचर होता है। सिनेमा जनसंचार की एक प्रमुख दृश्य-श्राव्य विधा है। वर्तमान समय में यह अत्यंत प्रभावी और लोकप्रिय और उत्कृष्ट है। इसमें समाज में घटित घटनाओं का वास्तविक चित्र प्रस्तुत होता है। वैश्वीकरण के आधुनिक युग में साहित्यकार तथा समाजशास्त्री सिनेमा जैसी सशक्त विधा के आस्तित्व को नकारा नहीं सकते हैं। समाज में घटित सभी घटनाओं का चित्र साहित्य में अभिव्यक्त होता है। आज के आधुनिक युग में सिनेमा यह मीड़िया का प्रमुख जनसंचार माध्यम है। साहित्य की तरह सिनेमा में समाज की सभी घटनाओं का यथार्थ चित्र अभिव्यक्त होता है।

साहित्य और समाज का अंतःसंबंध अन्योन्याश्रित है। साहित्यकार अपनी साहित्यिक कृति में समाज की विभिन्न समस्याओं का रोखांकन करते हुए पाठकों का ध्यान अनेक समस्याओं की ओर आकर्षित करते हैं। वे अपनी साहित्यिक रचनाओं के माध्यम से सामाजिक समस्याएँ दूर करने का प्रयत्न करते हैं। बिल्कुल इसी तरह फिल्म निर्माता फिल्म में विभिन्न सामाजिक समस्याओं का जीवंत चित्र प्रस्तुत कर दर्शकों को सामाजिक समस्याएँ दूर करने का संदेश देता है। वर्तमान दौर में साहित्य और सिनेमा का संबंध अत्यंत घनिष्ठ है। साहित्य की सर्वश्रेष्ठ कलाकृति को सिनेमा के माध्यम से सामान्य जनता तक अत्यंत कम समय में प्रभावी रूप से पहुँचाया जाता है। सिनेमा सहित्य पर आधारित दृश्य-श्राव्य विधा है। किसी भी सिनेमा के लिए एक कथावस्तु की आवश्कता होती है। इस कथावस्तु के लिए

फिल्म निर्माता को साहित्यकार पर निर्भर रहना पड़ता है। किसी देश के काल के चित्र को देखना समझना है तो उस समय के साहित्य को पढ़ना जाहिए क्योंकि समाज के विचारों, भावनाओं और परिस्थितियों का प्रभाव प्रत्यक्षतः साहित्यकार की सर्जना पर अवश्य ही पड़ता है। साहित्य वह माध्यम है जिसके द्वारा विचारधारोओं का चित्रण होता है। उदाहरण- "रूस की राज्य क्रांति भी रूसी लेखकों के उग्र विचारों का ही प्रतिफल थी। हिन्दुस्तान की आजादी में भी हिन्दुस्तानी साहित्य का विशेष प्रभाव रहा।" कबीर ने अपने साहित्य के माध्यम से सामाजिक चेतना का दीप प्रज्वलित किया। तुलसी जी ने भीरूजनों के कर्तव्य के प्रति सन्द किया। प्रेमचन्द का साहित्य सामाजिक चेतना को संवाहक है उन्होंने यथार्थ और आदर्श का समन्वय कर आदर्शोन्मुखी यथार्थवादी साहित्य की सर्जना की अन्याय और शोषण से भरे समाज का चिक्षण करने में प्रगतिवादी साहित्य ने बडी मुखर भूमिका निभायी हैं।

समाज के सर्वांगिण विकास में साहित्य की अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका होती है। किसी भी सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक, वैज्ञानिक आदि परिस्थितियों का वास्तविक प्रतिबिंब उस राष्ट्र की साहित्यिक रचनाएँ अत्यंत उपयुक्त साधन है। साहित्य घटित घटनाओं के अध्ययन के लिए साहितत्यिक रचनाएँ अत्यंत उपयुक्त साधन है। साहित्य और सिनेमा को एक-दूसरे के पूरक माना जाता है। प्रत्येक युग का साहित्यकार अपनी साहित्यिक कृति में समाज में घटित हर अच्छी-बुरी घटना का जीवंत चित्र प्रस्तुत करता है। वह समाज के हर छोटे-बडे विषय को अपने साहित्य का विषय बनाता है। सिनेमा बनानेवाला फिल्म निर्माता भी समाज की हर सूक्ष्म घटना को अपने साहित्य का विषय बनाता है। वह समाज की हर विसंगति को जनता तक पहुँचाने का प्रयास करता है। आज सिनेमा मनुष्य जीवन का अभिन्न अंग बन गया है। समाज के सभई वर्गो के व्यक्तियों के जीलन पर आधारित सिनेमा बनाया जा रहा है। सिनेमा दर्शकों की भावनाओं से जुड़ गया है। इसमें सामान्य मनुष्य जीवन के हर पहलु का जीवंत चित्र प्रस्तुत किया जाता है। सिनेमा में कथावस्तु, गीत, संगीत, अभिनय, संवाद, नाट्यकला आदि के संयोग से एक मार्मिक अभिव्यक्ति प्रस्तुत की जाती है। मनुष्यम मन की सूक्ष्म संवेदनाएँ, भावाभिव्यक्ति के साथ समाज की विभिन्न समस्याएँ, राजनीतिक विसंगतियाँ, सांस्कृतिक जीवन, आर्थिक परिवेश आदि का चित्रण साहित्य और समाज दोनों विधाएँ करती हैं। साहित्य और सिनेमा दोनों एक-दूसरे से प्रभावित होते हैं। आज अनेक साहित्यिक पत्रिकाएँ फिल्मों से संबंधित स्तंभ आलेख प्रकाशित कर रही हैं। आज भूमंडलीकरण के आधुनिक युग मे सिनेमा मानवीय भावनाओं और संवेदनाओं की अभिव्यक्ति का प्रभावी माध्यम बन गया है। सिनेमा के लिए एक अच्छे कथानक की आवश्यकता होती है। इस कथावस्तु के लिए सिनेमा को साहित्य पर विर्भर रहना पड़ता है। साहित्यकार अपनी रचनाओं में समाज में व्याप्त विभिन्न प्रकार की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक समस्याओं का यथार्थ अंकण करता है। राष्ट्र विघातक प्रवृत्तियाँ, जातिवाद, हिंसा, आंदोलन, बालविवाह, सतिप्रथा, अनमेल विवाह,

पारिवारिक जीवन में बिखराव, तणावग्रस्तता, घुटनशीलता, आधुनिक मनुष्य का अंतद्वंद, मुल्यहिनता आदि सामाजिक समस्याओं के यथार्थ पर साहित्य और सिनेमा प्रकाश डालते है।

हिंदी साहित्य में प्रेमचंद की 'मिल' कहानी पर 1934 ई.मेंअजंता सिनेटोन, मुंबई में फिल्माकंन किया गया। इसमें पूँजीपतियों द्वारा भारतीय मजदूरों का शेषण और मजदूरों की समस्याओं का जीवन उजागर किया गया है। प्रेमचंद के 'सेवासदन' उपन्यास पर बनी फिल्म में भारतीय समाज मे व्याप्त स्त्रियों के उपेक्षित जीवन पर प्रकाश डाला है। इसमें स्त्रियों की विभिन्न समस्याओं का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत हुआ है। प्रमचंद की 'सदगति' कहानी पर टेलीफिल्म बनी थी। इसमें दलित जीवन की पीड़ा, उनका शोषण अन्याय, अत्याचार, दु:खद जीवन आदि की यथार्थ अभिव्यक्ति हुई है। प्रेमचंद की 'रंगभूमि' उपन्यास पर बनी फिल्म में पूँजीपतियों के द्वारा सामान्य जनता के होनेवाले शोषण का पर्दाफाश किया है। प्रेमचंद के 'गोदान' उपन्यास पर फिल्माकंन हुआ है। इसमें ग्रामीण भारतीय कृषक वर्ग की दयनीय अवस्था और ग्रामीण जीवन की यथार्थ स्थिति का रेखांकन किया है। प्रेमचंद की 'शतरंज के खिलाडी' कहानी पर बनी फिल्म में विलासी प्रवृत्ति के नवाबी जीवन और स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व की भारतीय परिस्थितियों का जीवंत चित्र प्रस्तुत हुआ है।

कुवरपाल सिंह की पुस्तक 'सिनेमा और संस्कृति' में राही मासुम रजा ने सिनेमा का संबंध साहित्य के साथ समाज को प्रबोधन करनेवाली प्रभावशाली कला के साथ जोड़ा है। प्रेषक समाज के मूल्य निर्धारण में भारतीय ही नहीं विश्व सिनेमा का अवदान आश्चर्यजनक और अद्भूत है। भारत ही नहीं विश्व की विशाल दर्शक रूपी जनसंख्या के जीवन मूल्यों पर सिनेमा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभाव डालता ही है। आज साहित्य और सिनेमा से प्रभाव रहित समाज की कल्पना करना भी लगभग असंभव-सा लगता है। क्योंकि आज टी.वी. और सिनेमा दूर-दराज तक फैली हुई देश की जनसंख्या को अपने मूल्य शिक्षण और बोध प्रभामंडल से आलोकित कर रहा है। समाज में मूल्यनिर्धारण और सामाजिकता का भाव अब गुरु, बड़े बुजुर्ग, दादा, नानी के हाथ से पूरी तरह निकल चुका है। चलचित्र पति-पत्नी संबंधों का ही नहीं सामाजिक मूल्यों का भी निर्धारण करता है। यह बात मानों या न मानों, मगर सच तो यही है चलचित्रो में वैवाहिक जीवन एवं स्त्री पुरूष संबंधों के ऐसे नैतिक मूल्य दृश्यांकित किए जाते हैं जो पति-पत्नी और परिवार के माध्यम से समाज और राष्ट्र को नियंत्रित रखते हैं, क्योंकि मूल्य ही समाज के आदर्श का आधार स्तंभ है। सिनेमा के विषय मानव जीवन के रोजमर्रा की समस्याओं से जुड़े हैं। यहाँ व्यक्ति को फिल्म देखते हुए यह लगना स्वाभाविक है कि यह उसकी अपनी कहानी है यही साधारणीकरण है। पुरूष का अहम पत्नी की तरक्की, प्रगति प्रमोशन पाते ही कैसे चोट खाकर दांपत्य जीवन के मधुर रिश्ते को निगल लेता है। दर्शक इनमें अपनी छवियाँ पाकर अपने घर परिवार के मूल्यों के प्रति सतर्क और सहमत हो जाते हैं और सहीं मूल्यों पर डटे रहने की कोशिश करते हैं।

सिनेमा एक अच्छे शिक्षक की तरह बहुत कुछ सिखाता है। अनपढ़ और गँवारों को दिशा दिखाने वाली शिक्षा के लिए जोर देता है। 'थ्री इडियट' फिल्म आज ही की शिक्षा व्यवस्था को न केवल दर्शाती है बल्कि हमारी नई पीढ़ी को एक दिशा देती है। आज सिनेमा को शिक्षा से जोड़कर एक विधा के रूप में स्वीकार किया जाने लगा है। 'आरक्षण', 'तारे जमीन पर' जैसे फिल्म सिर्फ काम के लिए ही पढ़ने की सीख से अधिक, समझकर पढ़ने की सीख देती है। जब तग समाज शिक्षित नहीं होगा देश का सर्वांगीण विकास संभव नहीं है। सिनेमा ने बाल-मजदूर, स्त्री-शिक्षा, वेश्याओं की दुर्दशा को पर्दे पर दिखा समाज का ध्यान इनकी ओर खींचा, इन्हें शिक्षित और सबल होने की प्रेरणा भी देता है। समय-समय पर शिक्षा के परिवर्तित विषयों को लेकर फिल्में बनती आई हैं। 'मुन्ना भाई एम.बी.बी.एस' जैसी फिल्में शिक्षा के साथ मानवीय गुणों की भी सीख देती है और हमारी कमजोर शिक्षा व्यवस्था को दर्शाती है। सिनेमा का उद्देश्य समाज में शिक्षा का सकारात्मक प्रभआव को दर्शाना है ताकि जनहित में जागृति आ सके और जनता अपने हकों के प्रति जागरूक और सचेत हो सके। सिनेमा ने दलित और पीड़ीत वर्ग में जागृति लाने का प्रयास किया है। समाज के चारों ओर वर्ण व्यवस्था प्रबल है। दलित को सबसे निम्न और निच समझा जाता था। दलित साहित्य का निर्माण तो काफ़ी हुआ पर अशिक्षित वर्ग इसका फायदा नहीं ले पा रहा था। सिनेमा ने यही दलित उत्थान की बात अपने चित्रों के जरिए समाज की ही भाषा में बताई। जिसके परिणाम स्वरूप चेतना एवं जागृति और अधिक आई। 'पार' में दलितों की दयनीय हालत दिखाई गई। जिसमें एक गर्भवती स्त्री को जीवन यापन के लिए वैसी ही हालत में सुअरों को नदी पार करनी पड़ी। 'बंदिनी', 'डॉ. अम्बेडकर' जैसी अनेकों फिल्मे हैं जो दलितों के उत्थान में सहायक सिद्ध हुई। इन फिल्मों ने उच्च वर्ग के लोगों की मानसिकता में बदलाव लाया और समाज में निम्न वर्ग के लोगों में जागृति और चेतना प्रदान की।

धर्मवीर भारती के 'गुनाहों का देवता' पर कंवल शर्मा ने फिल्मांकन किया है। इसमें मध्यमवर्गीय जीवन की समस्याओं का चित्रण किया गया है। स्त्री-पुरूष के संबंधों की उलझन और आदर्शवादी सिध्दांतों का यथार्थ चित्रण हुआ हैं। 1952 ई. में प्रकाशित धर्मवीर भारती के 'सुरज का सातवाँ घोडा' उपन्यास पर श्याम बेनेगल ने 1992 में फिल्मांकन किया है। इसमें सात अलग-अलग कहानियाँ परस्पर सूत्रबद्धता से पिरोयी गयी है। इसमें मनुष्य का असफल प्रेम और मनुष्य जीवन की विभिन्न प्रकार की समस्याओं का यथार्थ अंकन किया गया है। इसमें व्यक्ति से अधिक समाज को महत्व दिया गया है। इसमें श्याम बेनेगल ने अत्यंत अनुपम, अनुकरणीय एवं अपूर्व प्रयोग किए हैं। इस फिल्म को नेशनल फिल्म अवार्ड प्राप्त हुआ है। भारती जी के 'अंधा युग' गीति नाट्य पर भी फिल्मांकन किया गया है। महाभारत के युद्ध के पश्चात निर्माण हुई भीषण परिस्थितियों का जीवंत चित्र प्रस्तुत किया गया है। इसमें समसामयिकता, सजगता, जीवन के प्रति आस्था, अहिंसा आदि का संदेश दिया है।

स्वतंत्रता पूर्व नारी की जो स्थिति थी उसके बदलाव में साहित्य ने एक अहम् भूमिका निभाई। दलितों में भी दलित नारी की स्थिति और हालत को साहित्य ने समाज के सामने रखा। वही सिनेमा ने भी इस नारी मन के रेशों-रेशों को खोलकर रख दिया। नारी जो चुपचाप अबला बन सब सहती थी, उसे सिनेमा के द्वारा एक चेतना मिली। सिनेमा ने औरत की हालत और दुर्दशा को दिखा उसमें बदलाव की माँग की ओर समय के साथ नारी वादी सोच को बदला भी। उसे शिक्षा से लेकर हर वो अधिकार दिए जाने लगे जिसकी वो हकदार थी। 'प्रेमरोग' फिल्म की नायिका विधवा होने के बाद अपने जेठ से शोषण की शिकार होती है और जेठानी उसके खिलाफ कुछ नहीं कर पाती। मासूम सी नायिका के जीने के सारे हक्क छीने जाते हैं। जमीन पर सोना, उबला हुआ खाना, पूजा-पाठ में मन लगाना ये सब उसके लिए हैं और घर की लाड़ली नायिका बेबसी में ये सब करने को मजबूर है और ऐसे में जब एक पुरूष उसे अपनाने को तैयार होता है तो समाज की रूढ़ियाँ आई आती है। 'दमन' की नायिका हजार सपने लिए ससुराल आती है पर पति के रूप में एक अय्यास और जानवर देख दुःखी होती है। पल-पल पति के प्यार को तरसती नायिका देवर की तरफ आकर्षित तो होती है पर समाज के बंधन उसके पैरों में बेड़ियाँ डाल देते हैं और भयानक तरीके से पति के शोषण की शिकार हुई नायिका भागने की कोशिश करती है। निरीह अबला नायिका खुद सब सहती है पर जब ये उसकी बेटी के साथ होने को होता है, तो अपने जानवर रूपी पति को गोली मार उसका संहार करती है। ये गोली नायिका की सहन शक्ति की हद थी जो बच्चों पर संकट आने पर माँ दुर्गा के रूप का प्रतीक बनती है।

सिनेमा की संवेदना में विजय अग्रवाल लिखते हैं, इस वर्ग की फिल्मों कलात्मक फिल्मों को रखा जा सकता है। ऐसी फिल्में हैं-'अंकुर', 'निशांत', 'मिर्च-मसाला', 'मंथन', 'अर्थ' आदि। इनके फिल्मकारों ने नारी समस्या की जड़ को समझने की कोशिश की। इनका निष्कर्ष था कि नारी के सामने अपनी अस्मिता और स्वतंत्रता का जो सबसे बड़ा संकट है उसका मूल कारण है उनकी आर्थिक पर निर्भरता, समाज का नारी के प्रति सामंतवादी दृष्टिकोण तथा नारी द्वारा स्वयं को शारिरिक एवं भावात्मक रूप से कमजोर समझने की परंपरागत धारणा। अपनी को फिल्मों के माध्यम से इन फिल्मकारों ने इस परंपरागत धारणा को तोड़ने और बदलने की कोशिश की। इसके अलावा कुच्छ फिल्में और भी हैं जो नारी सशक्तीकरण को दर्शाती हैं जैसे- 'प्रतिघात', 'चिंगारी', 'खूनभरी माँग', 'आखिर क्यों' आदि फिल्मों का उल्लेक हो सकता है।

सिनेमा में समाज में व्याप्त व्यवस्था विरोध को बड़े ही नाटकीय ढ़ग से फिल्माया है। विद्वत राजनीतिक व्यवस्था को साहित्य ने तो दिखाया ही था सिनेमा ने उसकी सारी गंदगी सबकी आँखों के सामने रख दी। 'राजनीति', 'आँधी', 'दामिनी', 'गंगाजल', व 'सिंघम' जेसी फिल्में राजनैतिक व्यवस्था की पोल खोलती हैं और भोली-भाली आम जनता को इन नेताओं के हाथों ठगनें से बचान का भरपूर

प्रयास करती हैं। जमीदांरों द्वारा किए जानेवाले शोषण और अत्याचारों को दर्शाते हुए समकालीन व्यवस्था पर आपेक्ष करती फिल्म जन-जागरण का कार्य करती हैं। नेताओं और जमीदांरों की वस्तुस्थिति और दोगलेपन को ये फिल्में सामने लाके अन्याय के खिलाफ़ आवाज़ उठाने को प्रेरित करती हैं। फिल्मों के नायक और नायिकाएँ आम व्यक्ति का प्रतिनिधित्व कर अपने शोषण की कहानी दिखाते हुए लोगों को जगाने का कार्य करते हैं। आज भारत में लगभग एक हजार फिल्में प्रतिवर्ष बनती हैं। इसमें सेक्स, प्रेम, रोमान्स, हिंसा या दूसरे सामाजिक विषयों पर आधारित फिल्मों की प्रधानता है। ऐतिहासिक और धार्मिक पृष्ठभूमि पर बनने वाली प्रेरणात्मक फिल्में कभी भी हाशिये पर चली गयी हैं।

इस तरह सिनेमा समाज में व्याप्त वर्ण व्यवस्था का विरोध दिखा समाज को सच्चाई से अवगत कराता है।

सारांश :

आज सिनेमा समाज का जीवंत प्रतिबिम्ब है। जिसके जरिए हमारी सोच और प्रवृत्तियाँ उजागर होती हैं। सिनेमा आज भी एक ऐसा सशक्त माध्यम है जो हमारे मानस को कहीं गहरायी तक आलोड़ित करता है और सामाजिक परिवर्तन का औजार बन सकता है। सिनेमा के इसी महत्व को ध्यान में रखते हुए आज सार्थक सिनेमा की चर्चा दिखायी देती है। साहित्य और सिनेमा ऐसे माध्यम हैं जिसमें समाज की बदलने की ताकत सबसे अधिक होती है। ऐसा भी कहा जाना ठिक नहीं होगा कि, सिनेमा, साहित्य से अधिक प्रभावशाली और आम जनता तक सरलता से पहुँचने वाला माध्यम है। हिंदी सिनेमा कुछ नकारात्मकता के बाद भी अपनी खोई हुई विरासत को पायेगा और अपनी जड़ों की सिंचित करेगा। इसलिए कलमकारों को भी अपनी कलम उस ओर मोड़ने की जरूरत है जहाँ भारतीय समाज उठता-जागता है। कलमकारों को फिर अपनी कलम उस ग्रामीण समाज की ओर मोड़ना होगा जहाँ आज भी बहुसंख्याक समाज रहता है। तभी हिंदी भाषा और साहित्य के संबंधो से भारतीय सिनेमा नया आकार ले पाएगा।

संदर्भ ग्रंथ :

1. साहित्य, समाज और हिंदी सिनेमा, डॉ. सुनील बापु बनसोडे
2. मीडिया और साहित्य, डॉ. योगेंद्र प्रताप सिंह
3. समकालीन साहित्य बाजार और मीडिया, डॉ. मायाप्रकाश पाण्डेय
4. सिनेमा और संस्कृति, डॉ. राही मासूम ऱजा
5. सिनेमा कल, आज, कल, विनोद भारद्वाज
6. सिनेमा और समाज, विजय अग्रवाल(1995)
7. वर्तमान साहित्य : सिनेमा विशेषांक (2002)